ओ३म्

‘अज्ञान मिश्रित धार्मिक मान्यताओं की सत्य के आलोक व प्राणिहित में समीक्षा व संशोधन की आवश्यकता’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

गंगा का उद्गम गंगोत्री से होता है जहां इसका जल पूर्ण शुद्ध व पवित्र होता है। गंगोत्री से गंगा नीचे उतरती है तो ऋषिकेश तथा हरिद्वार में पहुंच जाती हैं। यहां आते–आते इसके जल की शुद्धता वह नहीं रह

पाती जो गंगोत्री में होती है। इसी प्रकार से यदि हरिद्वार से चलकर बंगाल की खाड़ी में मिलने तक गंगा के जल की शुद्धता का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि हरिद्वार के बाद जल प्रदुषण में उत्तरोतर वृद्धि होती रहती है। हरिद्वार में ही हमारे प्रदुषण विशेषज्ञों द्वारा कहा गया है कि इसका जल आचमन अथवा पीने के योग्य नहीं है। इसको पीने से स्वास्थ्य को हानि होने का खतरा है। यह बात तो जल प्रदूषण के सन्दर्भ में है। **ऐसा ही कुछ–कुछ धार्मिक ज्ञान व परम्पराओं के सन्दर्भ में भी देखते हैं।** सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार वेदों का ज्ञान अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न अनेकानेक अथवा सहस्रों स्त्री पुरूषों में से 4 ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को दिया था। सम्भवतः इनका नामकरण भी ईश्वर की प्रेरणा से ही हुआ। ईश्वर का यह ज्ञान पूर्ण शुद्ध, पवित्र तथा विज्ञान का पोषक था तथा अज्ञान, अ–विज्ञान, अन्धविश्वास, मिथ्या विश्वास, परम्परा व कुरीतियों से सर्वथा रहित था। **ऐसा कैसे व क्यों था?** ऐसा इसलिये था कि ज्ञान देने वाली सत्ता ईश्वर ही सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, सबका रचयिता, जनक, निर्माता, सब विद्याओं का दाता, माता व पिता है। उसी ने सृष्टि बनाई है तो स्वाभाविक है कि उसे सृष्टि बनाने का पूरा ज्ञान है। हमारे उद्योगों में जो पदार्थ या उत्पाद बनते हैं उनके वैज्ञानिकों, इंजीनियरों व प्रमुख अधिकारियों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से उस उत्पाद के बनाने की पूरी जानकारी होती है। अब यदि वहां कोई नया अनुभवहीन अधिकारी या वैज्ञानिक भर्ती होता है तो उस व्यक्ति को वह अपना समस्त ज्ञान प्रेरणा द्वारा बोलकर अर्थात् व्याख्यान, उपदेश व प्रवचन द्वारा अथवा presentation और प्रयोगात्मक प्रशिक्षण द्वारा देते हैं। **ऐसा ही परमात्मा सृष्टि के आरम्भ में करता है।** वह समस्त सृष्टि को बनाकर उसमें पृथिवी ग्रह पर अग्नि, जल, वायु व आकाश की सृष्टि करता है। उसके बाद अन्य प्राणियों को बनाता है और अन्त में अमैथुनी सृष्टि के नियमों के अनुसार मनुष्यों को बनाता है। इनको बनाकर वह सभी उत्पन्न हुए मनुष्यों में से सबसे योग्य 4 ऋषियों, जिन्हें योग्य व पात्र वैज्ञानिक या अभियन्ता कह सकते हैं, प्रशिक्षण के रूप में चार वेदों का ज्ञान देता है जिससे वह अपने व अन्यों के जीवन का भली प्रकार निर्वाह कर–करा सकें। यह ज्ञान क्या होता है? यह ज्ञान मनुष्य के कर्तव्य व अकर्तव्यों, सृष्टि के पदार्थों के नाम, रूप व गुणों का जिसमें ईश्वर, जीव व प्रकृति तीनों ही सम्मिलित हैं व अन्य समस्त विद्याओं, ज्ञान व विज्ञान व इससे सम्बन्धित विषयों का जिससे कि सत्य ज्ञान व विज्ञान से युक्त सफल जीवन व्यतीत किया जा सके, होता है। **महर्षि दयानन्द (1825–1883) ने अपने अपूर्व पुरूषार्थ व उत्साह से वेदों का ज्ञान अर्जित किया और इसमें यथा सम्भव पूर्णता अर्जित करने के बाद यह घोषणा की कि चारों वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। इन वेदों को स्वयं पढ़ना, अध्ययन करना, दूसरों को पढ़ाना व अध्ययन कराना सब विद्वान व ‘आर्य’ संज्ञक श्रेष्ठ मनुष्यों का कर्तव्य है।** उन्होंने यह भी बताया कि सब सत्य विद्यायें और जो पदार्थ विद्या व विज्ञान से जाने जाते हैं, उनका सबका आदिमूल origin and root cause परमेश्वर है। **हम अनुभव करते हैं कि यह नियम ही विज्ञान की आधारशिला है।**

ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्होंने 3 भिन्न–भिन्न प्रकरणों में लिखा है कि ‘‘**ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्ता है। (सभी मनुष्यों को) उसी की उपासना करनी योग्य है। ...... ईश्वर कि जिसको ब्रह्म, परमात्मादि नामों से कहते हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानसुार सत्य न्याय से फलप्रदाता आदि लक्षणयुक्त है, वह परमेश्वर है, (मैं) उसी को मानता हूं। ..... जिसके गुण–कर्म–स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त, सत्य गुणवाला है, और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म**

जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है, उसी को ईश्वर कहते हैं।''

ईश्वर से भिन्न एक अन्य चेतन तत्व 'जीवात्मा' को वह अल्पज्ञ, एकदेशी, सूक्ष्म, आकार रहित, जन्म–मरण धर्मा, दुःखों से निवृत्ति की इच्छा रखने वाला, अजन्मा, नित्य, अनादि, वेदाध्ययन द्वारा सत्कर्मों को जानकर व करके दुःखों से निवृत्त होकर श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव को धारण कर जन्म मरण से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ एक तत्व व पदार्थ है, जिसको अग्नि जला नहीं सकती, मृत्यु के बाद भी जिसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता, जल जिसे गला नहीं सकता, शस्त्र जिसे काट नहीं सकते और यह ऐसा पदार्थ है कि वायु इसे सुख नहीं सकती। वह जीवात्मा का ऐसा स्वरूप स्वीकार करते हैं जो कि वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से पुष्ट है। उन्होंने अज्ञानियों के ज्ञानार्थ इसका प्रचार किया। इसी प्रकार से वह तीसरे तत्व प्रकृति की दो अवस्थायें बताते हैं जिनमें एक कारण अवस्था है और दूसरी कार्य अवस्था। कारण अवस्था में यह अति सूक्ष्म, सत्व, रज व तम गुणों की साम्यावस्था है तथा ईश्वर के अधीन नियंत्रण में रहती है। सारा आकाश इसके अति सूक्ष्म कणों से भरा हुआ होता है। इसी कारण प्रकृति से ईश्वर रचना कर परमाणु आदि अथवा महत्तत्व, अहंकार, पांच तन्मात्रायें आदि बनाकर यह सृष्टि व ब्रह्माण्ड जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र आदि हैं, निर्माण करता है। महर्षि दयानन्द व उनसे पूर्व अनेकानेक पूज्य ऋषियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान ही सत्य, यथार्थ व वास्तविक है। यह ज्ञान वेदों का पवित्र व शुद्ध ज्ञान है। विगत 1,96,08,53,114 वर्षों से प्रचलित रहने के कारण इसमें अज्ञान का मिश्रण, प्रदूषण आदि होने से यह ज्ञान विकृत हो गया। वेदों के अनुसार हमारे ऋषि–मुनि यज्ञ किया करते थे जो पूर्ण अंहिसा के नियमों का पालन करते थे परन्तु अज्ञानियों व स्वार्थी व्यक्तियों ने इसमें हिंसा करना आरम्भ कर दिया व धीरे–धीरे इसका प्रभाव बढ़ता रहा और बौद्ध काल तक आते–आते यज्ञ ही प्रदूषित नहीं हुए, अपितु सभी मान्यताओं, कर्तव्यों–अकर्तव्यों आदि में भी परिवर्तन हो गया जिससे साधारण मनुष्यों को कठिनाई होने लगी। **ऐसी विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न होने पर किसी समाज सुधारक का क्या कर्तव्य होता है।** क्या उस सारे ज्ञान को ही निषिद्ध कर दे या अनुसंधान कर उसमें जो अज्ञान मिल गया है, उन्हें ढूंढ कर पृथक कर दे या हटा दे। हमारे वैज्ञानिक भी सृष्टि का अध्ययन कर विज्ञान के नये–नये नियमों को ढूंढ कर उनसे मानवता के उपकार के कार्यों को करते हैं। गंगा में प्रदूषण है तो समझदार लोग यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसा उपाय किया जाये कि गंगा का बहना बन्द हो जाये अपितु वह कह रहे हैं कि गंगा में जो प्रदूषण है, उसे हटाया जाये एवं प्रदूषणकारक पदार्थों को उसमें मिलने से रोका जाये। परन्तु अतीत में ऐसा न कर उस समय के समाज सुधारकों ने वेदों की निन्दा कर डाली और उसकी अच्छी बातों को भी मानना अस्वीकार कर दिया। उनके व उनके अनुयायियों में वेद त्याज्य ग्रन्थ बन गये। यह कुछ ऐसा ही किया गया जैसे कि यदि किसी पुस्तक में कुछ मुद्रण दोष या सिद्धान्त विरूद्ध एकाधिक कथन हो तो पूरी पुस्तक जिसमें अनेकानेक मूल्यवान उपयोगी शिक्षायें व ज्ञान भी है, उसका पूर्ण बहिष्कार कर दिया जाये। हमें लगता है कि ऐसा करने वालों में ज्ञान की अवश्य कुछ कमी थी वरन् वह जान पाते कि वह वेदों की जिन अच्छी बातों को छुड़वा रहे हैं उससे मानव समाज की ऐसी हानि होगी जिसकी पूर्ति किसी भी प्रकार से नहीं का जा सकेगी। लोगों ने उनकी ही अनुचित व प्रमाणहीन असत्य बातों को उचित मान लिया और उनका अनुकरण करने लगे। समाज में जो स्वार्थी व अज्ञानी लोग थे, वह अपना मनोरथ सिद्ध करते रहे। आज भी पढ़े–लिखे शिक्षित कहलाने वाले अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनुचित कार्य करते हैं जिससे लाखों करोड़ों मनुष्यों के हितों की हानि होती है। यह सिलसिला जारी है, शायद ऐसे दुष्कृत्य कभी रूके भी न।

वेदों के विरोध व अज्ञानी स्वार्थी लोगों के कारण महाभारत काल के बाद और मध्यकाल में हमारा समाज अज्ञान, अन्धविश्वास, अनुचित परम्पराओं व कुरीतियों का दास बन गया जिसके जारी रहने से इन अकल्याणकर बातों का प्रभाव समय पाकर अधिक प्रभावशाली हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महर्षि दयानन्द द्वारा वेदों की सत्य व जन–कल्याणकारी शिक्षाओं के व्यापक प्रचार को भी समझा नहीं गया वा उसकी उपेक्षा की गई। **समाज की यह मानसिकता स्वयं के लिए अत्यन्त अहितकर व जीवन के लक्ष्य व उद्देश्य को जानने व प्राप्त करने में बाधक है।** आज भी देश व समाज के बहुत बड़े भाग द्वारा उन्हीं ज्ञान व तर्क से असिद्ध मान्यताओं को बिना परीक्षा के जीवन में माना जाकर उस पर आचरण किया जा रहा है। परिणाम की चिन्ता किसी को भी नहीं है। **जीवन के उद्देश्य ''साध्य'' व उसकी पूर्ति के साधनों से सभी मतों के अनुयायी अनभिज्ञ हैं और अज्ञानियों की तरह मिथ्याचार कर रहे हैं।** जिस प्रकार अन्धकार में घर की व बाहर की वस्तुयें स्पष्ट दिखाई नहीं देती, ऐसी स्थिति में हमें अभ्यास या अन्दाज से सहारा लेकर कार्य करना होता है, वैसा ही कुछ मध्यकाल व उससे कुछ पूर्व हमारे पूर्वजों ने किया जो धार्मिक क्षेत्रों में अब भी यथावत् विद्यमान है। **सर्वोपरि महान ईश्वरभक्त, देशभक्त व मानवहितैषी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर द्वारा वेदों के सत्य ज्ञान का प्रकाश कर जिन सत्य मान्यताओं और सिद्धान्तों का प्रचार किया, उसे हमारे देश और संसार के लोग अपने मनों में उपस्थित अन्धकार, अविद्यादि, हठ व दुराग्रह आदि के कारण समझ नहीं पाये और न ही उनकी इस विषय में कोई रूचि, कोशिश या प्रयत्न है, जो कि दुःखद है।** मध्यकाल में यज्ञों में होने वाली हिंसा के कारण उनके विरोध में हमारे महापुरूषों ने के कारण वेदों का ही निषेध कर दिया था और यहां तक किया व माना कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता ही नहीं है। उन्होंने सत्य को जानने का प्रयास ही नहीं किया जो कि उनका

कर्तव्य था। शताब्दियों के बाद यह कार्य महर्षि दयानन्द ने किया और यज्ञों व वेद पर जो मिथ्या आरोप लगे थे उन्हें अपनी अपूर्व विद्या व योगबल से धो कर स्वच्छ कर दिया। **उन्होंने बताया कि ईश्वर का अस्तित्व सत्य है और वह तर्कों व अनेक प्रमाणों से सिद्ध है।** आज करोड़ों की संख्या में उनके अनुयायी उनके ईश्वर की सत्ता व स्वरूप विषयक तर्कों व मान्यताओं से परिचित हैं। मध्यकालिक आचार्यों के कारण समस्त देशवासी पूर्ण या अर्ध व कुछ न्यून नास्तिक बना दिये गये थे और उनकी असत्य, मिथ्या व अज्ञानपूर्ण बातों को अज्ञानी लोगों ने अविवेकपूर्ण रूप से स्वीकार किया। इस सब स्थिति के जिए पूर्ण या कुछ कम व अधिक मात्रा में हमारे वह वेद मतावलम्बी भी दोषी हैं जिन्होंने वेदों को विकृत किया था। ऐसे लोगों ने समाज में अनेक मिथ्या विश्वासों को जन्म दिया। उनका विरोध व सुधार तो अवश्यमेव किया जाना था परन्तु इसके साथ सत्य की भी रक्षा करनी चाहिये थी न कि सत्य को त्याग देना उनकी बुद्धिमत्ता थी। यह ऐसा ही था कि यदि सिर दर्द है तो सिर को कटवा देने की सलाह देना या बात करना। यहां इतना ही कहा जा सकता है कि मध्यकाल में इस देश में जितने भी मत उत्पन्न हुए वह सत्य ज्ञान वेद के सम्मुख अब अनावश्यक व अप्रासंगिक हैं। **अब केवल सारी मानव जाति के लिए एक ही सत्य मत की आवश्यकता है जिसकी हर बात व किया ज्ञान, सत्य, बुद्धि, तर्क, युक्ति, प्रमाण, सृष्टि कम के अनुकूल, अकाट्य व विद्या से युक्त हो।** यही कार्य महर्षि दयानन्द ने अपने समय में किया। उनके द्वारा प्रस्तुत वेद मत का संशेधित व परिष्कृत स्वरूप ही इन कसौटियों पर खरा है। यदि ऐसा है तो फिर सभी मनुष्यों द्वारा इसे स्वीकार करने में बाधा क्या है? हमें अनुभव होता है कि हमारी अपनी अज्ञानता व स्वार्थ ही इसमें बाधक है, अन्य कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कब तक चलेगा, कहा नहीं जा सकता। जिस प्रकार बच्चे गुड्डे–गुड़ियों व खिलौनों से खेलते हैं और बड़े होकर ज्ञान प्राप्त होने पर उनसे खेलना छोड़ देते हैं, ऐसा ही मनुष्यों के साथ भी होना चाहिये परन्तु लगता है कि हमने इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण नहीं की है। जब हम व हमारे सभी बन्धुओं को अपने अज्ञान का ज्ञान हो जायेगा तभी इनका छूटना सम्भव है। **इसके लिए सच्चे गुरूओं जैसे कि हमारे वैज्ञानिक हैं, एसे धर्म–वैज्ञानिकों की आवश्यकता है।** ऐसे निष्पक्ष, सदाचारी, निर्लोभी, ज्ञानी, वेदों के विद्वान, दूसरों का कल्याण चाहने वाले, सबको अपने समान व ईश्वर के परिवार का अंग मानने वाले परोपकार में संलग्न महापुरूषों से ही उद्देश्य व लक्ष्य की पूर्ति सम्भव है।

आज तो स्थिति यह है कि अज्ञानी को अज्ञानी कहने, लोभी को लोभी, स्वार्थी को स्वार्थी, भ्रष्ट को भ्रष्ट, चोर को चोर, पाखण्डी को पाखण्डी, अन्धविश्वासी को अन्धविश्वासी, नास्तिक को नास्तिक, वेद निन्दक को वेद निन्दक कहने से वह अपने हितैषी को ही बुरा–भला कहते हैं। मांसाहारी, धूम्रपान करने वाले, जुआ खेलने वाले, व्यभिचारी, कुकर्मी, राष्ट्रघातियों को उनका स्वरूप बताने पर मुसीबत गले पड़ जाती है। ऐसा होने पर भी सज्जन पुरूष अपना कर्तव्य समझ कर सुधार का कार्य करते हैं जिसके नतीजे भले ही आशा से कम हों, परन्तु ऐसा करने पर उन्हें आत्म सन्तोष होता है। ऐसे कार्य कभी न कभी रंग लाते हैं और सफल होते हैं। समय कितना भी लगे, सुधार का कार्य जारी रहना चाहिये। हम आशा करते हैं कि वर्तमान समय का उपयोग कर हमारे शिक्षित व ज्ञानी माने जाने वाले धर्माचार्य व मतों के आचार्य अपने–अपने मत की निष्पक्ष होकर उसकी सत्य–असत्य की परीक्षा, समीक्षा व आलोचना करें और उनमें जो असत्य, अज्ञान व अन्धविश्वास है उसको अपने मत से पृथक कर दें या हटा दें। यह कार्य भी धर्म का कार्य होगा और इससे उनके अपने मतानुयायी व विश्व के सभी लोग लाभान्वित होगें। सत्य से बढ़कर संसार में कोई अन्य सिद्धान्त धर्म नहीं हो सकता, यह सर्वमान्य है। करना यह है कि हमें अपने धर्म की सभी बातों व मान्यताओं को सत्य व सर्वहितकारी बनाना है। इसके साथ सच्ची उपासना पद्धति को जानने व उसके निर्माण का कार्य भी हमारे धर्माचार्य करें जिससे मनुष्य जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष सफल हो सके। इसके लिए एक दूसरे के मत व विरोधी मत का अध्ययन कर भी सहायता ली जा सकती है। अन्यथा यही कहा जायेगा कि परमात्मा ने हमें मननशील मनुष्य बनाया परन्तु हम अपने स्वार्थ, अज्ञान व प्रलोभनों में लिप्त रहे, हमने सत्य की उपेक्षा की और अपना अमृत जीवन विफल व असफल कर दिया जिसका सुनिश्चित परिणाम भावी जीवन में दुःखों का वरण है। सभी मतों के सज्जन पुरूषों को भावी पीढ़ियों के ऐसे आरोपों से अपने मत को बचाना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला ब्लाक 2
देहरादून–248001
फोनः 9412985121